सूरतुल फ़ातिहा

نحمدہٗ و نصلی علیٰ رَسولہِ الکریم
اَعُوْذُ بِاللّٰہِ مِنَ الشَّیْطٰنِ الرَّجِیْم

بِسْمِ اللّٰہِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِیْمِ ①
اَلْحَمْدُ لِلّٰہِ رَبِّ الْعٰلَمِیْنَ ② الرَّحْمٰنِ الرَّحِیْمِ ③ مٰلِكِ یَوْمِ الدِّیْنِ ④ اِیَّاكَ نَعْبُدُ
وَاِیَّاكَ نَسْتَعِیْنُ ⑤ اِهْدِنَا الصِّرَاطَ الْمُسْتَقِیْمَ ⑥ صِرَاطَ الَّذِیْنَ اَنْعَمْتَ
عَلَیْهِمْ ۙ غَیْرِ الْمَغْضُوْبِ عَلَیْهِمْ وَلَا الضَّآلِّیْنَ ⑦

رَبِّ اشْرَحْ لِیْ صَدْرِیْ وَیَسِّرْ لِیْٓ اَمْرِیْ وَاحْلُلْ عُقْدَةً مِّنْ لِّسَانِیْ یَفْقَهُوْا قَوْلِیْ

सूरतुल फ़ातिहा अगरचे क़ुरान हकीम की मुख्तसर सूरतों में से है, इसकी कुल सात आयात हैं, लेकिन यह क़ुरान हकीम की अज़ीम तरीन सूरत है। इस सूरह मुबारका को उम्मुल क़ुरान भी कहा गया है और असासुल क़ुरान (foundation of Quran) भी। यानि यह पूरे क़ुरान के लिये जड़, बुनियाद और असास की हैसियत रखती है। यह अल-फ़ातिहा किस ऐतबार से है? فَتَحَ یَفْتَحُ के मायने हैं खोलना। चूँकि क़ुरान हकीम शुरु इस सूरत से होता है लिहाज़ा यह "सूरतुल फ़ातिहा" (The Opening Surah of the Qur'an) है। इसका एक नाम "अल-काफ़िया" यानि किफ़ायत करने वाली है, जबकि एक नाम "अश-शफ़िया" यानि शिफ़ा देने वाली है। दूसरी बात यह नोट कीजिये कि यह सूरह मुबारका पहली मुकम्मल सूरत है जो रसूल अल्लाह ﷺ पर नाज़िल हुई है। इससे पहले मुताफर्रिक़ (अलग-अलग) आयात नाज़िल हुईं। सबसे पहले सूरतुल अलक़ की पाँच आयतें, फिर सूरह नून या सूरतुल क़लम की सात आयतें, फिर सूरतुल मुज़म्मिल की नौ आयतें, फिर सूरतुल मुदस्सिर की सात आयतें और फिर सूरतुल फ़ातिहा की सात आयतें नाज़िल हुईं। लेकिन यह पहली मुकम्मल सूरत है जो नाज़िल हुई है रसूल अल्लाह ﷺ पर। सूरतुल हिज्र में एक आयत बाअल्फ़ाज़ आयी है:

وَلَقَدْ اٰتَیْنٰكَ سَبْعًا مِّنَ الْمَثَانِیْ وَالْقُرْاٰنَ الْعَظِیْمَ ۝۸۷

"हमने (ऐ नबी ﷺ!) आप ﷺ को सात ऐसी आयात अता की हैं जो बार-बार पढ़ी जाती हैं और अज़मत वाला क़ुरान।"

सूरतुल फ़ातिहा की सात आयतें दोहरा-दोहरा कर पढ़ी जाती हैं, नमाज़ की हर रकअत में पढ़ी जाती हैं, और यह सूरह मुबारका खुद अपनी जगह पर एक क़ुराने अज़ीम है। सही बुखारी की रिवायत है कि रसूल अल्लाह ﷺ ने इरशाद फरमाया: ((اَلْحَمْدُ لِلّٰہِ رَبِّ الْعٰلَمِیْنَ هِیَ السَّبْعُ الْمَثَانِیُ وَالْقُرْاٰنُ الْعَظِیْمُ الَّذِیْ اُتِیْتُهٗ))[1] "सूरह अल्हमदु लिल्लाही रब्बिल आलामीन ही "सबअ मसानी" और "क़ुराने अज़ीम" है जो मुझे अता हुई है।"

तादाद के ऐतबार से इसकी सात आयात मुत्तफिक़ अलै हैं। अलबत्ता अहले इल्म में एक इख्तलाफ़ है। बाज़ (कुछ) हज़रात के नज़दीक, जिनमें इमाम शाफ़ई (रहि०) भी शामिल हैं, आयत बिस्मिल्लाह भी सूरतुल फ़ातिहा का जुज़ (हिस्सा) है। उनके नज़दीक {بِسْمِ اللّٰہِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِیْمِ} सूरतुल फ़ातिहा की पहली आयत और { صِرَاطَ الَّذِیْنَ اَنْعَمْتَ عَلَیْهِمْ غَیْرِ الْمَغْضُوْبِ عَلَیْهِمْ وَلَا الضَّآلِّیْنَ} सातवी आयत है। लेकिन दूसरी तरफ इमाम अबु हनीफ़ा (रहि०) की राय यह है कि आयत बिस्मिल्लाह सूरतुल फ़ातिहा का जुज़ (हिस्सा) नहीं है, बल्कि आयत बिस्मिल्लाह क़ुरान मजीद की किसी भी सूरत का जुज़ नहीं है, सिवाय एक मक़ाम के जहाँ वह मतन में आयी है। हज़रत सुलेमान अलै० ने मलका-ए-सबा को जो ख़त लिखा था उसका तज़किरा सूरतुल नम्ल में बाअल्फ़ाज़ आया है: {اِنَّهٗ مِنْ سُلَیْمٰنَ وَاِنَّهٗ بِسْمِ اللّٰہِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِیْمِ} (आयत:30)। सूरतों के आगाज़ (शुरू) में यह अलामत (निशानी) के तौर पर लिखी गयी है कि यहाँ से नयी सूरत शुरू हो रही है। इन हज़रात के नज़दीक {اَلْحَمْدُ لِلّٰہِ رَبِّ الْعٰلَمِیْنَ} सूरतुल फ़ातिहा की पहली आयत और {اِهْدِنَا الصِّرَاطَ الْمُسْتَقِیْمَ} पाँचवी आयत है, जबकि { صِرَاطَ الَّذِیْنَ اَنْعَمْتَ عَلَیْهِمْ غَیْرِ الْمَغْضُوْبِ عَلَیْهِمْ وَلَا الضَّآلِّیْنَ} छठी और सातवी आयत है। जिन हज़रात के नज़दीक आयत बिस्मिल्लाह सूरतुल फ़ातिहा का जुज़ है वह नमाज़ में जहरी क़िरात करते हुए {بِسْمِ اللّٰہِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِیْمِ} भी बिलजहर (ऊँची आवाज़ में) पढ़ते हैं, और जिन हज़रात के नज़दीक यह सूरतुल

फ़ातिहा का जुज़ नहीं है वह जहरी क़िरात करते हुए भी बिस्मिल्लाह ख़ामोशी से पढ़ते हैं और {اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ رَبِّ الْعٰلَمِيْنَ} से क़िरात शुरू करते हैं।

नमाज़ का जुज़वे लाज़िम (ज़रूरी हिस्सा)

इस सूरह मुबारका का असलूब (अंदाज़) क्या है? यह बहुत अहम और समझने की बात है। वैसे तो यह कलामुल्लाह है, लेकिन इसका असलूब दुआइया है। यह दुआ अल्लाह ने हमें तलक़ीन फरमायी (सिखायी) है कि मुझसे इस तरह मुख़ातिब हुआ करो, जब मेरे हुज़ूर में हाज़िर हो तो यह कहा करो। वाक़िया यह है कि इसी बिना (वजह) पर क़ुरान मजीद की इस सूरत को नमाज़ का जुज़वे लाज़िम क़रार दिया गया है, बल्कि सूरतुल फ़ातिहा ही को हदीस में "अस-सलाह" कहा गया है, यानि असल नमाज़ सूरतुल फ़ातिहा है। बाक़ी इज़ाफी चीजें हैं, तस्बीहात हैं, रुकूअ व सुजूद हैं, क़ुरान मजीद का कुछ हिस्सा आप और भी पढ़ लेते हैं। हजरत उबादह बिन सामित (रजि०) से मरवी मुत्तफिक़ अलै हदीस है कि रसूल अल्लाह ﷺ ने इरशाद फ़रमाया: ((لَا صَلَاةَ لِمَنْ لَّمْ يَقْرَأْ بِفَاتِحَةِ الْكِتَابِ))[2] यानि जो शख्स (नमाज़ में) सूरतुल फ़ातिहा नहीं पढ़ता उसकी कोई नमाज़ नहीं है। इसके अलावा और भी बहुत सी अहादीस में यह मज़मून आया है।

इस ऐतबार से भी हमारे यहाँ एक फ़िक़ही इख्तलाफ़ मौजूद है। बाज़ हज़रात ने इस हदीस को इतना अहम समझा है कि आप बा-जमात नमाज़ पढ़ रहे हैं तब भी उनके नज़दीक आप इमाम के साथ-साथ ज़रूर सूरतुल फ़ातिहा पढ़ेंगे। चुनाँचे इमाम हर आयत के बाद वक़्फा दे। इमाम जब कहे: اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ رَبِّ الْعٰلَمِيْنَ तो इसके बाद मुक़तदी भी कहे: اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ رَبِّ الْعٰلَمِيْنَ ख्वाह (चाहे) अपने दिल में कहे। फिर इमाम कहे: الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ तो मुक़तदी भी दिल में कह ले: الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ यह मौक़फ (विचार) है इमाम शाफ़ई (रहि०) का कि नमाज़ चाहे जहरी (ऊँची आवाज़ में पढ़ने वाली) हो चाहे सिर्रि (हल्की आवाज़ से पढ़ने वाली) हो, अगर आप इमाम के पीछे पढ़ रहे हैं तो इमाम अपनी सूरतुल फ़ातिहा पढ़ेगा और आप अपनी पढेंगे और लाज़िमन पढेंगे।

इमाम अबु हनीफ़ा (रहि०) का मौक़फ (विचार) इसके बिल्कुल बरअक्स (विपरीत) है कि इमाम जब सूरतुल फ़ातिहा पढ़ेगा तो हम पीछे बिल्कुल नहीं पढेंगें, बल्कि इमाम की क़िरात ही मुक़तदियों की क़िरात है। उनका इस्तदलाल (तर्क) आयते क़ुरानी {وَاِذَا قُرِئَ الْقُرْاٰنُ فَاسْتَمِعُوْا لَهٗ وَاَنْصِتُوْا لَعَلَّكُمْ تُرْحَمُوْنَ} (आराफ:204) और हदीसे नबवी ﷺ ((مَنْ كَانَ لَهٗ اِمَامٌ فَقِرَاءَةُ الْاِمَامِ لَهٗ قِرَاءَةٌ))[3] से है। नेज़ (इसलिये) उनका कहना है कि नमाज़ बा-जमाअत में इमाम की हैसियत सबके नुमाइन्दे की होती है। अगर कोई वफ़द (प्रतिनिधि मंडल) कहीं जाता है और उस वफ़द का कोई सरबराह (प्रमुख) होता है तो वहाँ जाकर गुफ्तुगू (बात-चीत) वफ़द का सरबराह करता है, बाकि सब लोग ख़ामोश रहते हैं।

अब इस ज़िमन (बारे) में एक इन्तहाई मामला तो यह हो गया जो इमाम शाफ़ई (रहि०) का मौक़फ है कि चाहे जहरी नमाज़ हो या सिर्रि हो, उसमे इमाम के पीछे मुक़तदी भी सूरतुल फ़ातिह पढेंगे। आपको मालूम है कि ज़ोहर और अस्र सिर्रि नमाजें हैं, इनमे इमाम ख़ामोशी से क़िरात करता है, बुलन्द आवाज़ से नहीं पढ़ता, जबकि फज्र, मग़रिब और इशा जहरी नमाजें हैं, जिनमें सूरतुल फ़ातिहा और क़ुरान मजीद का कुछ हिस्सा पहली दो रकअतों में आवाज़ के साथ पढ़ा जाता है। इमाम अबु हनीफ़ा (रहि०) का मौक़फ है कि नमाज़ चाहे जहरी हो या सिर्रि हो, नमाज़ बा-जमाअत की सूरत में मुक़तदी ख़ामोश रहेगा और सूरतुल फ़ातिहा नहीं पढ़ेगा।

इनके अलावा एक दरमियानी मसलक भी है और वह इमाम मालिक (रहि०) और इमाम इब्ने तैमिया (रहि०) वगैरह का है। इस ज़िमन में उनका मौक़फ यह है कि जहरी रकअत में मुक़तदी सूरतुल फ़ातिहा मत पढ़े, बल्कि इमाम की क़िरात ख़ामोशी से सुने, अज़रूए निस क़ुरानी (आराफ़:204):

وَاِذَا قُرِئَ الْقُرْاٰنُ فَاسْتَمِعُوْا لَهٗ وَاَنْصِتُوْا لَعَلَّكُمْ تُرْحَمُوْنَ

"और जब क़ुरान पढ़ा जाये तो तुम पूरी तवज्जोह से इसे सुना करो और खुद ख़ामोश रहा करो, ताकि तुम पर रहम किया जाये।"

इसी तरह हदीसे नबवी ﷺ है: ((اِذَا قَرَأَ(الْاِمَامُ) فَاَنْصِتُوْا))[4] "जब इमाम क़िरात करे तो तुम ख़ामोश रहो।" चुनाँचे जब इमाम बिलजहर क़िरात कर रहा है: {اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ رَبِّ الْعٰلَمِيْنَ، الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ ، مٰلِكِ يَوْمِ الدِّيْنِ} तो आप सुनिये और ख़ामोश रहिये, लेकिन जो सिर्रि नमाज़ है उसमे इमाम अपने तौर पर सूरतुल फ़ातिहा पढ़े और अपने तौर पर ख़ामोशी से पढें। यह दरमियानी मौक़फ है, और मैंने बहरहाल इसी को इख़्तियार किया हुआ है।

फ़ितरते सलीमा की पुकार

सूरतुल फ़ातिहा के ज़िमन में, मैंने अर्ज़ किया कि यह दुआ है जो अल्लाह तआला ने हमें तलक़ीन की है। लेकिन इससे आगे बढ़ कर ज़रा क़ुरान मजीद की हिकमत और फ़लसफ़े पर गौर करेंगे तो इस सूरत की एक और शान सामने आयेगी। बुनियादी तौर पर क़ुरान का फ़लसफ़ा क्या है? इन्सान इस दुनिया में जब आता है तो फ़ितरत लेकर आता है, जिसे क़ुरान हकीम 'फितरतल्लाही' क़रार देता है, अज़रूए अल्फ़ाज़े क़ुरानी (अर-रूम:30): {فِطْرَتَ اللّٰهِ الَّتِيْ فَطَرَ النَّاسَ عَلَيْهَا} यही हक़ीक़त हदीसे नबवी ﷺ में बाअल्फाज़ बयान की गयी है: ((مَا مِنْ مَوْلُوْدٍ اِلَّا يُوْلَدُ عَلَى الْفِطْرَةِ، فَاَبَوَاهُ يُهَوِّدَانِهٖ اَوْ يُنَصِّرَانِهٖ اَوْ يُمَجِّسَانِهٖ))[5] "(नस्ले इन्सानी का) हर पैदा होने वाला बच्चा फ़ितरत पर पैदा होता है, लेकिन यह उसके वालिदैन हैं जो उसे यहूदी, नसरानी या मजूसी बना देते हैं।" हर बच्चा जो पैदा होता है फ़ितरते इस्लाम लेकर आता है। तो इन्सान की फ़ितरत के अन्दर अल्लाह तआला ने अपनी मारफ़त और अपनी मोहब्बत वदीयत (आन्तरिक देन) कर दी है। इसलिये कि जो रूहे इन्सानी है वह कहाँ से आयी है?

وَيَسْـَٔلُوْنَكَ عَنِ الرُّوْحِ ۭ قُلِ الرُّوْحُ مِنْ اَمْرِ رَبِّيْ

"(ऐ नबी ﷺ)! यह आपसे रूह के बारे में सवाल करते हैं। कह दीजिये कि रूह मेरे रब के अम्र (हुक्म) में से है।" (इसरा:85)

हमारी रूह रब तआला की तरफ से आयी है, लिहाज़ा इसके अन्दर अल्लाह की मारफ़त भी है, अल्लाह की मोहब्बत भी है। तो जब तक एक इन्सान की फ़ितरत में कोई कजी (विकृति) ना आये वह बेराह रवी (perversion) से महफ़ूज़ रहे तो इसे हम कहते हैं फितरते सलीमा, यानि सालिम (protected) और महफ़ूज़ फ़ितरत। इस फ़ितरत वाला इन्सान जब बुलूग (maturity) को पहुँचता है और उसे अक़्ले सलीम भी मिल जाती है, यानि सही-सही अन्दाज़ में ग़ौर करने की सलाहियत मिल जाती है तो इन दोनों चीज़ों के इम्तिज़ाज (मिलने) के नतीजे में ईमानियात के कुछ बुनियादी हक़ाइक़ इन्सान पर खुद मुन्कशिफ़ (प्रकट) हो जाते हैं, चाहे उसे कोई वही मिले या ना मिले। यह है फ़ितरत का मामला और यह है क़ुरान की हिकमत और फ़लसफ़े का उसूल। इसकी एक बड़ी शानदार मिसाल क़ुरान मजीद में हज़रत लुक़मान की दी गयी है, जो ना नबी थे ना किसी नबी के पैरोकार और उम्मती थे, लेकिन उन्हें अल्लाह ने हिकमत अता फरमायी थी।

"हिकमत" फ़ितरते सलीमा, क़ल्बे सलीम और अक़्ले सलीम के इम्तिज़ाज से वुजूद में आती है। अगर फ़ितरत भी महफ़ूज़ है, अक़्ल भी टेढ़ पर नहीं चल रही, बल्कि सही और सीधे रास्ते पर चल रही है तो इन दोनों के इम्तिज़ाज से जो हिकमत पैदा होती है, इंसान को जो दानाई (wisdom) मयस्सर आती है उसके नतीजे में वह पहचान लेता है कि इस कायनात का एक पैदा करने वाला है, यह खुद ब खुद नहीं बनी है। दूसरे यह कि वह अकेला है, तन्हा है, कोई उसका साझी नहीं है (لَا مِثْلَ لَہٗ وَلَا مِثَال لَہٗ وَلَا مَثِيْلَ لَہٗ وَلَا كُفُوَ لَہٗ وَلَا ضِدَّ لَہٗ وَلَا نِدَّ لَہٗ)। कोई उसका मद्दे मुक़ाबिल नहीं है और उसमें तमाम सिफ़ाते कमाल ब-तमामो कमाल मौजूद हैं। वह عَلٰى كُلِّ شَيْءٍ قَدِيْر है, بِكُلِّ شَيْءٍ عَلِيْم है, हर जगह मौजूद है, और उसकी ज़ात में कोई नुक़्स, कोई ऐब, कोई कोताही, कोई तक़सीर (fault), कोई कमज़ोरी, कोई ज़ौफ (दुर्बलता), कोई एहतियाज क़तअन नहीं है।

यह पाँच बातें फ़ितरते सलीमा और अक़्ले सलीम के नतीजे में इन्सान के इल्म में आती हैं, चाहे उसे अभी किसी वही से फैज़ (फ़ायदा) हासिल ना हुआ हो। चुनाँचे आप देखते हैं कि चीन का बड़ा फ़लसफ़ी और हकीम कनफ्यूसियस इन तमाम बातों को मानने वाला था, हालाँकि वह नबी तो नहीं था! मज़ीद बराँ (इसके अलावा) यह बात भी सामने आती है कि इन्सानी ज़िन्दगी सिर्फ़ यह दुनिया की ज़िन्दगी नहीं है, असल ज़िन्दगी एक और है जौ मौत के बाद शुरू होगी और उसमें इन्सान को इस ज़िन्दगी के

आमाल का पूरा-पूरा बदला मिलेगा, नेकियाँ कमाई हैं तो उनकी जज़ा मिलेगी और बदियाँ कमाई हैं तो उनकी सज़ा मिलेगी। यह वह हक़ाइक़ हैं कि जहाँ तक इन्सान अपनी अक़्ले सलीम और फितरते सलीमा की रहनुमाई से पहुँच जाता है। फिर इसका मन्तक़ी नतीजा यह निकलता है कि एक हस्ती जो यकता (अद्वितीय) है, वही पैदा करने वाला है, परवरदिगार है, عَلٰى كُلِّ شَىْءٍ قَدِيْر है, بِكُلِّ شَىْءٍ عَلِيْم है, वही राज़िक़ है, वही ख़ालिक़ है, वही मालिक है, वही मुश्किल कुशा है, तो अब उसी की बन्दगी होनी चाहिये, उसी का हुक्म मानना चाहिये, उसी से मोहब्बत करनी चाहिये, उसी को मतलूब बनाना चाहिये, उसी को मक़सूद बनाना चाहिये। यह इसका मन्तक़ी नतीजा है और यहाँ तक इन्सान अक़्ले सलीम और फ़ितरते सलीमा की रहनुमाई से पहुँच जाता है।

दरख्वास्त-ए-हिदायत

अलबत्ता अब आगे मसला आता है कि मैं क्या करूँ क्या ना करूँ? इसमें भी जहाँ तक इन्फ़रादी (व्यक्तिगत) मामलात हैं, उनके ज़िमन में एक रोशनी अल्लाह ने इन्सान के बातिन में रखी हुई है, उसके ज़मीर के अन्दर, क़ल्ब और रूह के अन्दर यह रोशनी मौजूद है कि इन्सान नेकी और बदी को खूब जानता है। अज़रूए अल्फाज़े क़ुरानी (अश्शम्स):

وَنَفْسٍ وَّمَا سَوّٰىهَا ۝ فَاَلْهَمَهَا فُجُوْرَهَا وَتَقْوٰىهَا ۝

"क़सम है नफ्से इन्सानी की और जो उसे सँवारा (दुरुस्त किया, उसकी नोक-पलक सँवारी), फिर उसमें नेकी और बदी का इल्म इल्हामी तौर पर रख दिया।"

हर इन्सान जानता है कि झूठ बोलना बुरा है, सच बोलना अच्छा है, वादा पूरा करना अच्छा है, वादा ख़िलाफ़ी बुरी बात है, पड़ोसी को सताना बहुत बुरी बात है जबकि पड़ोसी के साथ खुशख़ुलक़ी के साथ पेश आना इन्सानियत का तक़ाज़ा है। तो इन्फ़रादी सतह पर भी इन्सान सही और ग़लत, हक़ और बातिल में कुछ ना कुछ फर्क़ कर लेता है। लेकिन जब इज्तमाई (सामाजिक) ज़िन्दगी का मामला आता है तो उसके लिये मजबूरी है कि वह नहीं समझ सकता कि ऐतदाल (मध्यम) का रास्ता कौनसा है। आइली (पारिवारिक) ज़िन्दगी में औरत का मक़ाम क्या होना चाहिये, औरत के हुक़ूक़ क्या होने चाहिये। चुनाँचे एक इन्तहा तो यह है कि दुनिया में औरत को मर्द की मिलकियत बना लिया गया। जैसे भेड़-बकरी किसी की मिलकियत है, ऐसे ही गोया बीवी भी खाविन्द की मिलकियत है, उसकी कोई हैसियत ही नहीं, उसके कोई हुक़ूक़ ही नहीं, उसका कोई लीगल स्टेटस ही नहीं, उसके कोई दस्तूरी हुक़ूक़ ही नहीं। वह ना किसी शय (चीज़) की मालिक हो सकती है, ना कोई कारोबार कर सकती है। और एक इन्तहा यह होती है कि कोई किल्योपत्रा (69-30 ई.पू. मिस्र की एक रानी) है जो किसी क़ौम की सरबराह बन कर बैठ जाये और फिर उसका बेड़ा गर्क़ कर दे, जैसा मिस्र का बेड़ा किल्योपत्रा ने गर्क़ किया। तो यह दो मुताज़ाद (विपरीत) इन्तहाएँ हैं।

आज हमें मग़रिब में नज़र आ रहा है कि मर्दो-ज़न शाना-ब-शाना और बराबर हैं। इसका नतीजा क्या निकला? फैमिली लाइफ़ ख़त्म होकर रह गई। अब वहाँ सिर्फ़ One Parent Family है। बिल क्लिंटन ने नये साल पर अपनी क़ौम को जो पैग़ाम दिया था उसमें कहा था कि अनक़रीब (जल्द ही) हमारी अमेरिकी क़ौम की अज़ीम अक्सरियत हरामज़ादों पर मुश्तमिल होगी। (उसने अल्फ़ाज़ इस्तेमाल किये थे: Born without any wedlock)। हलालज़ादा और हरामज़ादा में यही तो फर्क़ है कि अगर माँ-बाप का निकाह हुआ है, शादी हुई है तो उनके मिलाप के नतीजे में पैदा होने वाला बच्चा उनकी हलाल और जायज़ औलाद है। लेकिन अगर एक मर्द और एक औरत ने बगैर निकाह के ताल्लुक़ क़ायम कर लिया है तो इस तरह बगैर किसी लीगल मैरिज के, बगैर किसी शादी के बन्धन के जो औलाद होगी वह हरामी है। बिल क्लिंटन को मालूम था कि उनके यहाँ अब जो बच्चे पैदा हो रहे हैं वो अक्सरो बेशतर बगैर किसी शादी के बन्धन के पैदा हो रहे हैं, लिहाज़ा उसने कहा कि अनक़रीब हमारी क़ौम की अक्सरियत हरामज़ादों पर मुश्तमिल होगी। एक कौम की कज रवी और perversion की इन्तहा यह है कि उन्होंने बुनियादी फार्मो में से बाप का नाम ही निकाल दिया है। इसलिये कि बहुत से बच्चों को पता ही नहीं है कि

हमारा बाप कौन है, वह तो अपनी माँ से वाक़िफ़ हैं, बाप के बारे में उन्हें कुछ इल्म नहीं है।

इसी तरह सरमाया और मेहनत के दरमियान हुक़ूक़ व फ़राइज़ का तवाज़ुन (संतुलन) क्या हो, यहाँ भी इन्सान बेबस है। सरमायादार की अपनी मसलहतें (स्वार्थ) हैं और मज़दूर की अपनी मसलहतें (स्वार्थ) हैं। सरमायादार को अन्दाज़ा नहीं हो सकता कि मज़दूर पर क्या बीत रही है, वह किन मशक़्क़तों में है। बक़ौल अल्लामा इक़बाल:

तू क़ादिर व आदिल है मगर तेरे जहान में
है तल्ख़ बहुत बन्दा-ए-मज़दूर के अवक़ात!

लिहाज़ा सरमाये के क्या हुक़ूक़ हैं और लेबर के क्या हुक़ूक़ हैं, इनमें तवाज़ुन क्या हो, यह किस तरह मुअय्यन (तय) होगा?

इसी तरह का मामला फ़र्द और मआशरे का है। एक तरफ इन्फ़रादी हुक़ूक़ और इन्फ़रादी आज़ादी है और दूसरी तरफ मआशरा, क़ौम और रियासत (state) है। किसके हुक़ूक़ ज़्यादा होंगे? एक फ़र्द कहता है मैं आज़ाद हूँ, मैं मादरज़ाद बराहना (बिल्कुल नंगा) होकर सड़क पर चलूँगा, तुम कौन हो मुझे रोकने वाले? आया (क्या) उसे रोका जा सकता है कि नहीं? अगर उसे रोक दिया जाये तो उसकी आज़ादी पर क़दगन (प्रतिबन्ध) हो जायेगी। अगर उसे कहा जाये कि तुम इस तरह नहीं निकल सकते तो आज़ादी तो नहीं रही, उसकी मादर-पीदर आज़ादी तो ख़त्म हो जायेगी! लेकिन ज़ाहिर बात है कि एक रियासत और मआशरे के कुछ उसूल हैं, उसके कुछ अख़्लाक़ियात हैं, कुछ क़वाइद व क़वानीन हैं। वह चाहती है कि उनकी पाबन्दी की जाये, और पाबन्दी कराने के लिये वह चाहती है कि उसके पास इख़्तियारात हों, ऑथोरिटी हो। दूसरी तरफ़ अवाम यह चाहते हैं कि हमारे हुक़ूक़ का सारा मामला हमारे अपने हाथ में होना चाहिये। अब इसमें ऐतदाल का रास्ता कौन सा है?

यह है वह उक़दाये ला यन्हल (dilemma) जिसमें इन्सान के लिये इसके सिवा कोई और शक्ल नहीं है कि घुटने टेक कर अल्लाह से दुआ करे कि परवरदिगार! मैं इस मसले को हल नहीं कर सकता, मैं तुझसे रहनुमाई चाहता हूँ। तू मुझे हिदायत दे, सीधे रास्ते पर चला! मैंने तुझे पहचान लिया, मैंने यह भी जान लिया कि मरने के बाद जी उठना है और हिसाब किताब होगा और मुझे जवाबदेही करनी पड़ेगी, और मैं इस नतीजे पर भी पहुँच चुका हूँ कि तेरी ही बन्दगी करनी चाहिये, तेरी ही इताअत करनी चाहिये, तेरे ही हुक्म पर चलना चाहिये.... लेकिन इससे आगे मैं क्या करूँ क्या ना करूँ? क्या सही है क्या गलत है? क्या जायज़ है क्या नाजायज़ है? मेरा नफ्स तो मुझे अपनी मरग़ूब चीज़ों पर उकसाता है। लेकिन जिस चीज़ के लिये मेरे नफ्स ने मुझे उकसाया है वह जायज़ भी है या नहीं? सही भी है या नहीं? फ़ौरी री तौर पर तो मुझे इससे मुसर्रत (ख़ुशी) हासिल हो रही, मुझे इससे लज़्ज़त हासिल हो रही है, मनफ़अत (फ़ायदा) पहुँच रही है, लेकिन मैं नहीं जानता कि आख़िरकार नतीजे के ऐतबार से यह चीज़ मआशरे के लिये और खुद मेरे लिये नुक़सानदेह भी हो सकती है? ऐ अल्लाह! मैं नहीं जानता, तू मुझे हिदायत दे, मुझे रास्ता दिखा, सीधा रास्ता, दरम्यानी रास्ता, ऐसा रास्ता जो मुतवाज़िन हो, जिसमें इन्साफ हो, जिसमें अद्ल और क़िस्त हो, जिसमें किसी के हुक़ूक़ साक़ित ना हों और कोई जाबिर (हिंसक) बन कर मुसल्लत (लागू) ना हो जाये, जिसमें ना कोई हुज़्न (शोक) व मलाल और मायूसी व दरमान्दगी (depression) हो, ना कोई मआशी इस्तहसाल (आर्थिक शोषण) हो, ना कोई समाजी इम्तियाज़ (भेदभाव) हो। ऐ रब्ब! इन तीनों चीज़ों से पाक एक सिराते मुस्तक़ीम मैं अपने ज़हन से तलाश नहीं कर सकता, मेरे फ़ैसले जो हैं गलत हो जाएँगे। तो मैं हाथ जोड़ कर अर्ज़ करता हूँ कि मुझे इस सीधे रास्ते की हिदायत बख़्श दे।

यूँ समझिये कि पसमंज़र में एक शख़्स है जो अपनी सलामती-ए-तबअ, सलामती-ए-फ़ितरत और सलामती-ए-अक़्ल की रहनुमाई में यहाँ तक पहुँच गया कि उसने अल्लाह को पहचान लिया, आख़िरत को पहचान लिया, यह भी तय कर लिया कि रास्ता एक ही है और वह है अल्लाह की बन्दगी का रास्ता, लेकिन इसके बाद उसे एहतियाज (ज़रूरत) महसूस हो रही है कि मुझे बताया जाये कि अब मैं दायीं तरफ़ मुड़ूं या बायीं तरफ मुड़ूं? यह मुझे नहीं मालूम। क़दम-क़दम पर चौराहे आ रहे हैं, सैराहे आ रहे हैं। ज़ाहिर बात है इनमें से एक ही रास्ता होगा जो सीधा मंज़िले मक़सूद

तक लेकर जायेगा। कहीं मैं गलत मोड़ मुड़ गया तो मेरा हाल इस शेर के मिस्दाक़ हो जायेगा:

रुस्तम कि ख़ार अज़ पाकशम महमुल निहाँ शद अज़ नज़र
यक लहज़ा गाफिल गुश्तम वसद साला राहम दूर शद!

एक छोटी सी गलती इन्सान को कहाँ से कहाँ ले जाती है। ज़ाहिर बात है कि सीधे रास्ते से आप ज़रा सा कज (टेढ़े) हो गये तो जितना आप आगे बढेंगे इसी क़दर उस सिराते मुस्तक़ीम से आपका फ़ासला बढ़ता चला जायेगा। आगाज़ में तो महज़ दस डिग्री का एंगल था, ज़्यादा फ़ासला नहीं था, लेकिन यह दस डिग्री का एंगल खुलता चला जायेगा और आप सिराते मुस्तक़ीम से दूर से दूर तर होते चले जाऐंगे।

अल्लाह करे कि सूरतुल फ़ातिहा को पढ़ते हुए हम भी इसी मक़ाम पर खड़े हों कि हमारा दिल थका हुआ हो, हमें अल्लाह पर ईमान, अल्लाह की रबूबियत पर ईमान, अल्लाह की रहमानियत पर ईमान, अल्लाह के मालिकी यौमुद्दीन होने पर ईमान हासिल हो। यह भी हमारा अज़्म (दृढ संकल्प) हो और हमारा तयशुदा फ़ैसला हो कि उसी की बन्दगी करनी है, और फिर उसके सामने दस्त सवाल दराज़ करें कि परवरदिगार हमें हिदायत अता फरमा!

सूरतुल फ़ातिहा के तीन हिस्से

इस सूरह मुबारका के असलूब के हवाले से अब मैं इसके मज़ामीन का तजज़िया आपके सामने रखता हूँ। इस सूरह मुबारका को आप तीन हिस्सों में तक़सीम कर सकते हैं। पहली तीन आयात में अल्लाह की हम्दो सना है, आखरी तीन आयात में अल्लाह से दुआ है, जबकि दरमियान की चौथी आयत में बन्दे का अपने रब से एक अहद व पैमान है। यह गोया अल्लाह और बन्दे का एक Hand Shake है।

जुज़वे अव्वल: पहली तीन आयात में इन्सान की तरफ से उन हक़ाइक़ का इज़हार है जहाँ तक वह ख़ुद पहुँच गया है। यह तीन आयतें मिल कर एक जुम्ला बनती हैं। ग्रामर के ऐतबार से भी यह बड़ी ख़ूबसूरत तक़सीम है। पहली तीन आयतों में (जो मिल कर एक जुम्ला बनती हैं) अल्लाह की हम्दो सना है।

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ رَبِّ الْعٰلَمِيْنَ ۝ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ ۝ مٰلِكِ يَوْمِ الدِّيْنِ ۝

"कुल शुक्र और कुल सना अल्लाह के लिये है जो तमाम जहानों का परवरदिगार और मालिक है। बहुत रहम फरमाने वाला, निहायत मेहरबान है, जज़ा और सज़ा के दिन का मालिक व मुख़्तार है।"

{اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ} अल्हमदु मुब्तदा लिल्लाही खबर। "कुल तारीफ़ (कुल हम्दो सना और कुल शुक्र) अल्लाह के लिये है।" अब वह अल्लाह कौन है? {رَبِّ الْعٰلَمِيْنَ} "जो तमाम जहानों का मालिक है (परवरदिगार है, परवरिश कुनिन्दाह [प्रदाता] है)।" {الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ} "जो रहमान और रहीम है।" अल्हमदुलिल्लाह में लाम हर्फे जर है लिहाज़ा 'अल्लाह' मजरूर है। इसके बाद आने वाले कलिमात रब्बिल आलामीन, अर्रहमानिर्रहीम और मालिकी यौम इद्दीन 'अल्लाह' का बदल होने के बाइस मजरूर हैं। यह गोया एक जुम्ला चला आ रहा है: कुल हम्द, कुल सना, कुल शुक्र उस अल्लाह के लिये है जो तमाम जहानों का मालिक है, मुख़्तार है, आक़ा है, परवरदिगार है, रहमान है और रहीम है।

नोट कर लीजिये कि आयत बिस्मिल्लाह में भी अल्लाह तआला के नाम के साथ यह दोनों सिफाती नाम "अर्रहमान अर्रहीम" आये हैं। बल्कि दोनों जगह अल्लाह के लिये तीन नाम हैं। सबसे पहला नाम "अल्लाह" है। इसे कहा जाता है कि यह अल्लाह तआला का इस्मे ज़ात है। अगरचे मैं इसका क़ायल नहीं हूँ। यह भी एक सिफाती नाम है। "इलाह" पर "अल" दाखिल होकर "अल्लाह" बन गया। लेकिन बहरहाल "अल्लाह" का नाम बड़ी अहमियत का हामिल है और अरब में सबसे ज़्यादा मारूफ़ यही नाम था। जब क़ुरान ने रहमान का तज़किरा करना शुरू किया तो वह हैरान हुए और कहने लगे कि यह रहमान क्या होता है? (مَا الرَّحْمٰنُ) तब यह कहा गया: (बनी इसराइल:110)

قُلِ ادْعُوا اللّٰهَ اَوِ ادْعُوا الرَّحْمٰنَ ؕ اَيًّا مَّا تَدْعُوْا فَلَهُ الْاَسْمَآءُ الْحُسْنٰى ۚ

"(ऐ नबी ﷺ! इनसे) कह दो कि उसे अल्लाह कह कर पुकार लो या रहमान कह कर पुकार लो, जो कह कर भी पुकारोगे तो तमाम अच्छे नाम उसी के हैं।"

यह तमाम सिफाते कमाल उसी की ज़ात में मौजूद हैं। (Call the rose by any name it will smell as sweet.)

इस्म "अल्लाह" के तीन मायने हैं। तफ़सील से सर्फे नज़र करते हुए अर्ज़ कर रहा हूँ कि अवाम के नज़दीक अल्लाह से मुराद हाजत रवा है, जिसकी तरफ इन्सान तकलीफ़ और मुसीबत में, मुश्किलात में, रिज़्क़ के लिये और अपनी दीगर हाजात के लिये रुजूअ करता है। "अल्लाह" का एक और मफ़हूम ये है कि वह हस्ती जो इन्सान को सबसे ज़्यादा महबूब हो {وَالَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اَشَدُّ حُبًّا لِّلّٰهِ} यह सूफ़िया किराम का तसव्वुर है। और एक है फ़लसफ़े का तसव्वुर कि "अल्लाह" वह हस्ती है जिसकी किना (वजूद) से कोई वाक़िफ़ नहीं हो सकता, उसके बारे में ग़ौरो फिक्र से सिवाय तहय्यर (आश्चर्यजनक) के और कुछ हासिल नहीं हो सकता। तो इस माद्दे "अलिफ लाम हा" या "वाव लाम हा" के अन्दर तीन मायने हैं- 1) वह हस्ती कि जिसकी तरफ अपनी तकलीफ़ व मुसीबत के रफ़ा करने के लिये और अपनी ज़रूरियात पूरी कराने के लिये रुजूअ किया जाये। 2) वह हस्ती जिससे इन्तहाई मोहब्बत हो। 3) जिसकी हस्ती का इदराक (अहसास) मुमकिन नहीं, जिसकी किना (वजूद) हमारे फ़हम और हमारे तसव्वुर से मा वरा, वराउल वरा, सुम्मा वराउल वरा (high, higher, highest) है।

{الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ} रहमत के माद्दे से यह अल्लाह के दो अस्मा हैं। इना दोनों में फ़र्क़ क्या है? رَحْمٰن, فَعْلَان के वज़न पर मुबालगे का सीगा है, चुनाँचे इसके अन्दर मुबालगे की कैफ़ियत है, यानि इन्तहाई रहम करने वाला। इसलिये कि अरब जो इस वज़न पर कोई लफ़्ज़ लाते हैं तो मालूम होता है कि उसमें निहायत शिद्दत है। मसलन غَضْبَان "गुस्से में लाल भभूका शख़्स।" सूरतुल आराफ़ में हज़रत मूसा अलै० के लिये अल्फ़ाज़ आये हैं {غَضْبَانَ اَسِفًا} "गुस्से और रन्ज में भरा हुआ।" अरब कहेगा: اَنَا عَطْشَانُ: मैं प्यास से मरा जा रहा हूँ। اَنَا جَوْعَانُ: मैं भूक से मरा जा रहा हूँ। तो रहमान वह हस्ती है जिसकी रहमत ठाठे मारते हुए समुन्दर की मानिन्द है।

और "رَحِيْم" فَعِيْل के वज़न पर सिफते मुशब्बा है। जब कोई सिफ्त किसी की ज़ात में मुस्तक़िल और दाइम हो जाये तो वह फ़ईल के वज़न पर आती है। अर्रहमानिर्रहीम दोनो सिफ़ात इकट्ठी होने का मायना यह है कि उसकी रहमत ठाठें मारते हुए समुन्दर की मानिन्द भी है और उसकी रहमत में दवाम भी है, वह एक दरिया की तरह मुस्तक़िल रवां-दवां है। अल्लाह तआला की रहमत की यह दोनों शानें ब-यक वक़्त मौजूद हैं। हम इसका कुछ अन्दाज़ा एक मिसाल से कर सकते है। फ़र्ज़ कीजिये कहीं कोई एक्सीडेन्ट हुआ हो और वहाँ आप देखें कि कोई ख़ातून बेचारी मर गयी है और उसका दूध पीता बच्चा उसकी छाती के साथ चिमटा हुआ है। यह भी पता नहीं है कि वह कौन है, कहाँ से आयी है, कोई उसके साथ नहीं है। इस कैफ़ियत को देख कर हर शख़्स का दिल पसीज जायेगा और हर वह शख़्स जिसकी तबियत के अन्दर नेकी का कुछ माद्दा है, चाहेगा कि इस लावारिस बच्चे की कफ़ालत और इसकी परवरिश की ज़िम्मेदारी मैं उठा लूँ। लेकिन हो सकता है कि जज़्बात के जोश में आप यह काम तो कर जायें लेकिन कुछ दिनों के बाद आपको पछतावा लाहक़ हो जाये कि मैं खाम्हा ख्वाह यह ज़िम्मेदारी ले बैठा और मैंने एक बोझ अपने ऊपर नाहक़ तारी कर लिया। चुनाँचे हमारे अन्दर रहम का जो जज़्बा उभरता है वह जल्द ही ख़त्म हो जाता है, वह मुस्तक़िल और दाइम नहीं है, जबकि अल्लाह की रहमत में जोश भी है और दवाम भी है, दोनों चीजें ब-यक वक़्त मौजूद हैं।

{مٰلِكِ يَوْمِ الدِّيْنِ} "वह जज़ा और सज़ा के दिन का मालिक है।" वह मुख़्तारे मुतलक़ है। क़यामत के दिन इन्सानों के आमाल के मुताबिक़ जज़ा और सज़ा के फ़ैसले होंगे। किसी की वहाँ कोई सिफ़ारिश नहीं चलेगी, किसी का वहाँ ज़ोर नहीं चलेगा, कोई दे दिला कर छूट नहीं सकेगा, किसी को कहीं से मुतलक़न कोई मदद नहीं मिलेगी। उस रोज़ कहा जायेगा: {لِمَنِ الْمُلْكُ الْيَوْمَ} "आज किसके हाथ में इख़्तियार और बादशाही है?" {لِلّٰهِ الْوَاحِدِ الْقَهَّارِ} "उस अल्लाह के हाथ में है जो अकेला है और पूरी क़ायनात पर छाया हुआ है।" अब देखिये ग्रामर की रू से यह एक जुम्ला मुक़म्मल हुआ:

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ رَبِّ الْعٰلَمِيْنَ ۙ﴿۱﴾ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ ۙ﴿۲﴾ مٰلِكِ يَوْمِ الدِّيْنِ ؕ﴿۳﴾

"कुल हम्द व सना और शुक्र उस अल्लाह के लिये है जो तमाम जहानों का परवरदिगार और मालिक है, जो रहमान है, रहीम है, और जो जज़ा व सज़ा के दिन का मालिक और मुख़्तारे मुतलक़ है।"

जुज़वे सानी: सूरतुल फ़ातिहा का दूसरा हिस्सा सिर्फ़ एक आयत पर मुश्तमिल है, जो हर ऐतबार से इस सूरत की मरकज़ी आयत है:

اِيَّاكَ نَعْبُدُ وَاِيَّاكَ نَسْتَعِيْنُ ؕ﴿۴﴾

"हम सिर्फ़ तेरी ही बन्दगी करते हैं और करते रहेंगे और हम सिर्फ़ तुझ ही से मदद चाहते हैं और चाहते रहेंगे।"

ज़मीर मुख़ातिब "ک" को मुक़द्दम करने से हश्र का मफ़हूम पैदा होता है। फिर अरबी में फ़अल मुज़ारेअ, ज़माना-ए-हाल और मुस्तक़बिल दोनों के लिये आता है, लिहाज़ा मैंने तर्जुमे में इन बातों का लिहाज़ रखा है। यह बन्दे का अपने परवरदिगार से अहद व पैमान है जिसे मैंने hand shake से ताअबीर किया है। इसका सही तसव्वुर एक हदीस क़ुदसी की रोशनी में सामने आता है, जिसे मैं बाद में पेश करूँगा। यहाँ समझने का असल नुक्ता यह है कि यह फ़ैसला कर लेना तो आसान है कि ऐ अल्लाह! मैं तेरी ही बन्दगी करूँगा, लेकिन इस फ़ैसले को निभाना बहुत मुश्किल है।

यह शहादत गहे उलफ़त में क़दम रखना है
लोग आसान समझते हैं मुस्लमान होना!

अल्लाह की बन्दगी के जो तक़ाज़े हैं उनको पूरा करना आसान नहीं है, लिहाज़ा बन्दगी का अहद करने के फ़ौरन बाद अल्लाह की पनाह में आना है कि ऐ अल्लाह! मैं इस ज़िमन में तेरी ही मदद चाहता हूँ। फ़ैसला तो मैंने कर लिया है कि तेरी ही बन्दगी करूँगा और इसका वादा कर रहा हूँ, लेकिन इस पर कारबन्द रहने के लिये मुझे तेरी मदद दरकार है। चुनाँचे रसूल अल्लाह ﷺ के अज़कारे मासूरह में हर नमाज़ के बाद आप ﷺ का एक ज़िक्र यह भी है: ((رَبِّ اَعِنِّیْ عَلٰی ذِکْرِکَ وَ شُکْرِکَ وَ حُسْنِ عِبَادَتِکَ))[6] "परवरदिगार! मेरी मदद फरमा कि मैं तुझे याद रख सकूँ, तेरा शुक्र अदा कर सकूँ और तेरी बन्दगी आहसन तरीक़े से बजा लाऊँ।" तेरी मदद के बग़ैर मैं यह नहीं कर सकूँगा।

{اِيَّاكَ نَعْبُدُ وَاِيَّاكَ نَسْتَعِيْنُ} जब भी आप इस आयत को पढ़ें तो आपके ऊपर एक ख़ास कैफ़ियत तारी होनी चाहिये कि पहले कंपकपी तारी हो जाये कि ऐ अल्लाह! मैं तेरी बन्दगी का वादा तो कर रहा हूँ, मैंने इरादा तो कर लिया है कि तेरा बन्दा बन कर ज़िन्दगी गुज़ारूँगा, मैं तेरी जनाब में इसका इक़रार कर रहा हूँ, लेकिन ऐ अल्लाह! मैं तेरी मदद का मोहताज हूँ, तेरी तरफ़ से तौफीक़ होगी, तैसीर (सुविधा) होगी, तआवुन (सहयोग) होगा, नुसरत (मदद) होगी तब ही मैं यह अहदो पैमान पूरा कर सकूँगा, वरना नहीं।

{اِيَّاكَ نَعْبُدُ وَاِيَّاكَ نَسْتَعِيْنُ} आयत एक है लेकिन जुम्ले दो हैं। "اِيَّاكَ نَعْبُدُ" मुकम्मल जुम्ला है, जुम्ला फ़अलिया इन्शाइया और "اِيَّاكَ نَسْتَعِيْنُ" दूसरा जुम्ला है। बीच में हर्फे अतफ़ वाव है। इससे पहले इस सूरह मुबारका में कोई हर्फे अतफ़ नहीं आया है। इसलिये कि अल्लाह तआला की सारी सिफ़ात उसकी ज़ात में ब-यक वक़्त मौजूद हैं। यहाँ हर्फे अतफ़ आ गया: "ऐ अल्लाह! हम तेरी ही बन्दगी करते हैं और करते रहेंगे" और "तुझ ही से मदद माँगते हैं और माँगते रहेंगे।" हमारा सारा दारोमदार और तवक्कुल तुझ ही पर है। हम तेरी मदद ही के सहारे पर इतनी बड़ी बात कह रहे हैं कि ऐ अल्लाह! हम तेरी ही बन्दगी करते रहेंगे।

हम नमाज़े वितर में जो दुआ-ए-क़ुनूत पढ़ते हैं कभी आपने उसके मफ़हूम पर भी गौर किया है? उसमें हम अल्लाह तआला के हुज़ूर बहुत बड़ा इक़रार करते हैं:

اَللّٰهُمَّ اِنَّا نَسْتَعِيْنُكَ وَ نَسْتَغْفِرُكَ وَ نُؤْمِنُ بِكَ وَ نَتَوَكَّلُ عَلَيْكَ وَ نُثْنِيْ عَلَيْكَ الْخَيْرَ وَ نَشْكُرُكَ وَلَا نَكْفُرُكَ، وَ نَخْلَعُ وَ نَتْرُكُ مَنْ يَّفْجُرُكَ، اَللّٰهُمَّ اِيَّاكَ نَعْبُدُ وَلَكَ نُصَلِّيْ وَنَسْجُدُ وَاِلَيْكَ نَسْعٰى وَنَحْفِدُ، وَنَرْجُوْا رَحْمَتِكَ وَنَخْشٰى عَذَابَكَ اِنَّ عَذَابَكَ بِالْكُفَّارِ مُلْحِقٌ.

"ऐ अल्लाह! हम तुझ ही से मदद चाहते हैं, और तुझ ही से अपने गुनाहों की मग़फ़िरत तलब करते हैं, और हम तुझ पर ईमान रखते हैं, और तुझ पर तवक्कुल करते हैं, और तेरी तारीफ़ करते हैं, और

तेरा शुक्र अदा करते हैं और तेरी नाशुक्री नहीं करते। और हम अलैहदा (अलग) कर देते हैं और छोड़ देते हैं हर उस शख़्स को जो तेरी नाफ़रमानी करे। ऐ अल्लाह! हम तेरी ही इबादत करते हैं और तेरे ही लिये नमाज़ पढ़ते हैं और सज्दा करते हैं, और हम तेरी तरफ़ कोशिश करते है और हम हाज़िरी देते हैं। और हम तेरी रहमत के उम्मदीवार हैं और तेरे अज़ाब से ड़रते हैं, बेशक तेरा अज़ाब काफ़िरों को पहुँचने वाला है।"

वाक़िया यह है कि इस दुआ को पढ़ते हुए लरज़ा तारी (खौफ़) होता है कि कितनी बड़ी-बड़ी बातें हम अपनी ज़ुबान से निकाल रहे हैं। हम ज़ुबान से तो कहते हैं कि "ऐ अल्लाह! हम सिर्फ़ तेरी ही मदद चाहते हैं" लेकिन ना मालूम किस-किस के सामने हाथ फैलाते हैं और किस-किस के सामने जबीं सायी करते (सर झुकाते) हैं, किस-किस के सामने अपनी इज़्ज़त-ए-नफ्स का धैला करते हैं। फिर यह अल्फ़ाज़ देखिये: وَ نَخْلَعُ وَ نَتْرُكُ مَنْ يَّفْجُرُكَ कि जो भी तेरी नाफ़रमानी करे उसे हम अलैहदा कर देते हैं, उसको हम छोड़ देते हैं, उससे तर्के ताल्लुक़ कर लेते हैं। लेकिन क्या वाक़िअतन हम किसी से तर्के ताल्लुक़ करते हैं? हम कहते हैं दोस्ती है, रिश्तेदारी है क्या करें, वह अपना अमल जाने मैं अपना अमल जानूँ। हमारा तर्ज़े अमल तो यह है। तो कितना बड़ा दावा है इस दुआ के अन्दर? और वह पूरा दावा इस एक जुम्ले में मुज़मर है: اِيَّاكَ نَعْبُدُ "परवरदिगार! हम तेरी ही बन्दगी करते हैं और करते रहेंगे।" चुनाँचे उस वक्त फ़ौरी तौर पर बन्दे के सामने यह कैफ़ियत आ जानी चाहिये कि ऐ अल्लाह मैं यह उसी सूरत में कर सकूँगा अगर तेरी मदद शामिले हाल रहे।

जुज़वे सालिस: सूरतुल फ़ातिहा का तीसरा हिस्सा तीन आयात पर मुश्तमिल है, ताहम (हालाँकि) यह एक ही जुम्ला बनता है।

اِهْدِنَا الصِّرَاطَ الْمُسْتَقِيْمَ ۝ صِرَاطَ الَّذِيْنَ اَنْعَمْتَ عَلَيْهِمْ ۙ غَيْرِ الْمَغْضُوْبِ عَلَيْهِمْ وَلَا الضَّآلِّيْنَ ۝ (آمين)

"(ऐ रब हमारे!) हमें हिदायत बख़्श सीधी राह की। राह उन लोगों की जिन पर तेरा ईनाम हुआ, जो ना तो मग़ज़ूब हुए और ना गुमराह।"

अब दखिये यह اِيَّاكَ نَسْتَعِيْنُ ही की तशरीह है जो आख़री तीन आयतों में है। हमें अल्लाह से क्या मदद चाहिये? पैसा चाहिये? दौलत चाहिये? नहीं नहीं! ऐ अल्लाह हमें यह नहीं चाहिये। फिर क्या चाहिये? {اِهْدِنَا الصِّرَاطَ الْمُسْتَقِيْمَ} "हमें सीधे रास्ते की हिदायत अता फ़रमा।" यह जो ज़िन्दगी के मुख़्तलिफ़ मामलात में दोराहे, सेराहे और चौराहे आ जाते हैं, वहाँ हम फ़ैसला नहीं कर सकते कि सही क्या है, ग़लत क्या है। लिहाज़ा ऐ अल्लाह! हमें सीधे रास्ते की तरफ़ हिदायत बख़्श। "اِهْدِ" हिदायत से फ़अले अम्र है कि हमें हिदायत दे। हिदायत का एक दर्जा यह भी है कि सीधा रास्ता बता दिया जाये। हिदायत का दूसरा दर्जा यह है कि सीधा रास्ता दिखा दिया जाये, और हिदायत का आख़री मरतबा यह है कि उँगली पकड़ कर सीधे रास्ते पर चलाया जाये, जैसे बच्चों को लेकर आते हैं। लिहाज़ा सीधे रास्ते की हिदायत की दुआ में यह सारे मफ़हूम शामिल होंगे। ऐ अल्लाह! हमें सीधा रास्ता दिखा दे। ऐ अल्लाह! इस सीधे रास्ते के लिये हमारे सीनों को खोल दे। اَللّٰهُمَّ نَوِّرْ قُلُوْبَنَا بِالْاِيْمَانِ وَاشْرَحْ صُدُوْرَنَا لِلْاِسْلَامِ "ऐ अल्लाह! हमारे दिलों को ईमान की रोशनी से मुनव्वर कर दे और हमारे सीनों को इस्लाम के लिये खोल दे।" हमें उस पर इन्शराह-ए-सद्र (खुले दिल) हो जाये। और फिर यह कि हमें उस सीधे रास्ते के ऊपर चला।

अब आगे इस सिराते मुस्तक़ीम की भी वज़ाहत है, और यह वज़ाहत दो तरह से है। सिराते मुस्तक़ीम की वज़ाहत एक मुसबत अन्दाज़ में और एक मन्फ़ी अन्दाज़ में की गयी है। मुसबत अन्दाज़ यह है कि

صِرَاطَ الَّذِيْنَ اَنْعَمْتَ عَلَيْهِمْ ۙ

"(ऐ अल्लाह!) उन लोगों के रास्ते पर (हमें चला) जिन पर तूने अपना ईनाम नाज़िल फ़रमाया।"

यह मज़मून जाकर सूरतुन्निसा में खुलेगा कि मुनअम अलैहिम चार गिरोह हैं:

مِّنَ النَّبِيّٖنَ وَالصِّدِّيْقِيْنَ وَالشُّهَدَآءِ وَالصّٰلِحِيْنَ ۚ وَحَسُنَ اُولٰٓئِكَ رَفِيْقًا ۝

"कि वह नबी, सिद्दीक़ीन, शुहादा और सालेहीन हैं। और बहुत ही ख़ूब है उनकी रफ़ाक़त।"

ऐ अल्लाह! उनके रास्ते पर हमें चला। यह तो मुसबत बात हो गयी। मन्फ़ी अन्दाज़ यह इख़्तियार फ़रमाया:

"ना उन पर तेरा ग़ज़ब नाज़िल हुआ और ना ही वह गुमराह हुए।" غَيْرِ الْمَغْضُوْبِ عَلَيْهِمْ وَلَا الضَّآلِّيْنَ ۝

जो लोग सिराते मुस्तक़ीम से भटक गये वो दो क़िस्म के हैं। उनमें फ़र्क़ यह है कि जो शरारते नफ्स की वजह से गलत रास्ते पर चलता है उस पर अल्लाह का ग़ज़ब नाज़िल होता है, और जिसकी नीयत तो गलत नहीं होती, लेकिन वो गुलू (ज़रूरत से ज़्यादा मोहब्बत) करके जज़्बात में आकर कोई गलत रास्ता इख़्तियार कर लेता है तो वह ضالّ (गुमराह) है। चुनाँचे "مَغْضُوْبِ عَلَيْهِمْ" की सबसे बड़ी मिसाल यहूद हैं कि अल्लाह की किताब उनके पास थी, शरीअत मौजूद थी, लेकिन शरारते नफ्स और तकब्बुर की वजह से वह ग़लत रास्ते पर चल पड़े। जबकि नसारा "ضَّآلِّيْنَ" हैं, उन्होंने हज़रत मसीह अलै० के बारे में सिर्फ़ गुलू किया है। जैसे हमारे यहाँ भी बाज़ नात गौ और नात ख्वा नबी करीम ﷺ की शान बयान करते हैं तो मुबालगा आराई (ज़रुरत से ज़्यादा मोहब्बत) करते हुए कभी उन्हें अल्लाह से भी ऊपर ले जाते हैं। यह गुलू होता है, लेकिन होता है नेक नीयति से, मोहब्बत से। चुनाँचे नसारा ने हुब्बे रसूल में गुलू से काम लेते हुए हज़रत ईसा अलै० को ख़ुदा का बेटा बना दिया। हमारे शिया भाईयों में से भी बाज़ लोग हैं जो हज़रत अली रजि० को ही ख़ुदा बना बैठे हैं। मसलन,

"लेकिन नहीं है ज़ाते ख़ुदा से जुदा अली!"

बहरहाल यह गुलू होता है जो इन्सानों को गुमराह कर देता है। इसी लिये क़ुरान में कहा गया है: (अल् मायदा:77)

"ऐ किताब वालों! अपने दीन में नाहक़ गुलु से काम ना लो।" قُلْ يٰٓاَهْلَ الْكِتٰبِ لَا تَغْلُوْا فِيْ دِيْنِكُمْ غَيْرَ الْحَقِّ

लेकिन नसारा ने अपने दीन में और हज़रत ईसा अलै० की मोहब्बत में गुलू से काम लिया तो वह गुमराह हो गये। तो ऐ अल्लाह! इन सबके रास्ते से हमें बचा कर सीधे रास्ते पर चला, जो सिद्दिक़ीन का, अंबिया का, शुहादा का और सालेहीन का रास्ता है।

हदीसे क़ुदसी

आखिर में वह हदीसे क़ुदसी पेश कर रहा हूँ जिसमें सूरतुल फ़ातिहा ही को अस-सलाह (नमाज़) क़रार दिया गया है। यह मुस्लिम शरीफ़ की रिवायत है और हज़रत अबु हुरैरा रजि० इसके रावी है। वह बयान करते है कि मैंने रसूल अल्लाह ﷺ को यह इरशाद फ़रमाते हुए सुना कि अल्लाह तआला फ़रमाता है:

((قَسَمْتُ الصَّلَاةَ بَيْنِيْ وَ بَيْنَ عَبْدِيْ نِصْفَيْنِ وَلِعَبْدِيْ مَا سَأَلَ، فَإِذَا ا قَالَ الْعَبْدُ وَالْحَمْدُ لِلّٰهِ رَبِّ الْعٰلَمِيْنَوَ قَالَ اللّٰهُ تَعَالٰى: حَمِدَنِيْ عَبْدِيْ، وَإِذَا قَالَ وَالرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِوَ قَالَ اللّٰهُ تَعَالٰى: اَثْنٰى عَلَيَّ عَبْدِيْ، وَإِذَا قَالَ وَمٰلِكِ يَوْمِ الدِّيْنِوَ قَالَ مَجَّدَنِيْ عَبْدِيْ۔ وَقَالَ مَرَّةً: فَوَّضَ اِلَيَّ عَبْدِيْ۔ فَإِذَا قَالَ وَاِيَّاكَ نَعْبُدُ وَاِيَّاكَ نَسْتَعِيْنُوَ قَالَ هٰذَا بَيْنِيْ وَ بَيْنَ عَبْدِيْ وَلِعَبْدِيْ مَا سَأَلَ، فَإِذَا قَالَ وَاهْدِنَا الصِّرَاطَ الْمُسْتَقِيْمَ صِرَاطَ الَّذِيْنَ اَنْعَمْتَ عَلَيْهِمْ ۹ غَيْرِ الْمَغْضُوْبِ عَلَيْهِمْ وَلَا الضَّآلِّيْنَوَ قَالَ هٰذَا لِعَبْدِيْ وَلِعَبْدِيْ مَا سَأَلَ))

"मैंने नमाज़ को अपने और अपने बन्दे के दरमियान दो बराबर हिस्सों में तक़सीम कर दिया है (इसका निस्फ हिस्सा मेरे लिये और निस्फ हिस्सा मेरे बन्दे के लिये है) और मेरे बन्दे को वह अता किया गया जो उसने तलब किया। जब बन्दा कहता है: "अल्हमदुलिल्लाही रब्बिल आलामीन" तो अल्लाह फ़रमाता है कि मेरे बन्दे ने मेरी हम्द की (मेरा शुक्र अदा किया)। जब बन्दा कहता है: "अर्रहमानिर्रहीम" तो अल्लाह फ़रमाता है कि मेरे बन्दे ने मेरी सना की। जब बन्दा कहता है: "मालिकी यौमइद्दीन" तो अल्लाह फ़रमाता है कि मेरे बन्दे ने मेरी बुज़ुर्गी और बड़ाई बयान की-- और एक मर्तबा आप ﷺ ने यह भी फ़रमाया "मेरे बन्दे ने अपने आप को मेरे सुपुर्द कर दिया—(गोया यह पहला हिस्सा कुल का कुल अल्लाह के लिये है।) फिर जब बन्दा कहता है कि "इय्याका नाअबुदु व इय्याका नस्तईन" तो अल्लाह तआला फ़रमाता है कि

यह हिस्सा मेरे और मेरे बन्दे के माबैन (बीच) मुशतरिक (साझा) है और मैंने अपने बन्दे को बख़्शा जो उसने माँगा। (गोया यह हिस्सा एक क़ौल व क़रार और अहद व मीसाक़ [घोषणापत्र] है। इसे मैंने कहा था कि यह अल्लाह और बन्दे के दरमियान Shake Hand है।) फिर जब बन्दा कहता है: "इहदी नस्सिरातल मुस्तक़ीम, सिरातल्लाज़ीना अन'अमता अलैहिम, गयरिल मग़दूबी अलैहिम वलद्दाल्लीन" तो अल्लाह फ़रमाता है कि यह हिस्सा (कुल का कुल) मेरे बन्दे के लिये है और मेरे बन्दे ने जो कुछ मुझसे तलब किया वह मैंने उसे बख़्शा।"(7)

इस हदीस की रू से सूरतुल फ़ातिहा के तीन हिस्से बन जाएँगे। पहला हिस्सा कुल्लियतन अल्लाह के लिये है और आखरी हिस्सा कुल्लियतन बन्दे के लिये, जबकि दरमियानी व मरकज़ी आयत: "اِيَّاكَ نَعْبُدُ وَاِيَّاكَ نَسْتَعِيْنُ" बन्दे और अल्लाह के माबैन (बीच) क़ौल व क़रार है। गोया इसका भी निस्फे अव्वल अल्लाह के लिये और निस्फे सानी बन्दे के लिये है। इसी तरह निस्फ-निस्फ की तक़सीम ब-तमाम व कमाल पूरी हो गयी!

एक बात यह भी नोट कर लीजिये कि इस हदीसे क़ुदसी में "قَسَمْتُ الصَّلَاةَ بَيْنِىْ وَ بَيْنَ عَبْدِىْ نِصْفَيْنِ" के बाद आयत "बिस्मिल्लाह" का ज़िक्र नहीं है, बल्कि "اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ رَبِّ الْعٰلَمِيْنَ" से बात बराहे रास्त आगे बढ़ती है। इससे यह साबित हुआ कि इस ज़िमन में इमाम अबु हनीफ़ा रहि० का मौक़फ दुरुस्त है कि आयत बिस्मिल्लाह सूरतुल फ़ातिहा का जुज़ नहीं है।

इस सूरह मुबारका के इख्ततताम पर "आमीन" कहना मसनून है। "आमीन" के मायने हैं "ऐ अल्लाह ऐसा ही हो!" इस सूरह मुबारका का असलूब चूँकि दुआइया है, लिहाज़ा दुआ के इख्ततताम पर "आमीन" कह कर बन्दा गोया फिर बारगाहे इलाही में अर्ज़ करता है कि ऐ परवरदिगार! मैंने यह अर्ज़राश्त (घोषणा) तेरे हुज़ूर पेश की है, तू इसे शर्फ़े क़ुबूल अता फरमा।

بارک اللہ لی و لکم فی القرآن العظیم و نفعنی و ایا کم بالآیات والذکر الحکیم۔

❀ ❀ ❀